उपनिषदों में वर्णित जीविकोपार्जन के साधन

डॉ0 लज्जा भट्ट*, कु0 निर्मला**

सारांश

भारतीय धर्म, सभ्यता, संस्कृति तथा कला आदि के विकास तथा उन्नति में उपनिषदों का महत्वपूर्ण स्थान है। उपनिषद् का मूलाधार वेद ही है। उपनिषद्कालीन युग में जीवन की आवश्यकताएँ पूर्ण करने हेतु व्यक्ति बहुत कुछ स्वयं ही समर्थ होता था।उपनिषद् के आर्थिक जीवन का प्रमुख आधार कृषि तथा पशुपालन थे। विभिन्न प्रकार के स्वाद वाली सरसों, तिल आदि फसलों को उगाना इस युग में प्रारम्भ हो गया था। इस युग में कृषि करने से आर्थिक आत्मनिर्भरता और सम्पन्नता के द्वार खुले। अन्न को ब्रह्म की संज्ञा दी गई थी। उसी से प्राणी उत्पन्न होते हैं और उसी पर जीवित रहते हैं। औपनिशदिक समाज में कृषि तथा पशुपालन ही 'विश्' के प्रमुख कार्य थे तथा वे सभी वर्णों के साथ सम्बन्ध रखते थे। उपनिषदों में जीविकोपार्जन के प्रमुख केन्द्र वैश्य थे किन्तु आजीविका के निर्वाह के लिए कृषि, पशुपालन, धातु उद्योग, वस्त्र–उद्योग, भेषज निर्माण, यातायात, व्यापार आदि उद्योग भी प्रचलित थे। कृषि की उन्नति पशुपालन के व्यवसाय पर प्रकाश डालती है। उपनिषद्काल में पशुपालन तथा कृषिकर्म इन द्विविध व्यवसायों द्वारा समाज की प्रमुख आवश्यकताओं की पूर्ति होती थी।

मुख्य शब्द– उपनिषद् , कृषि , पशुपालन, धर्म, सभ्यता, संस्कृति, कला, ऋक्संहिता, वाजसनेयी संहिता, कृष्ण, यजुर्वेद, छान्दोग्योपनिषद्, कठोपनिषद्, प्रश्नोपनिषद्, बृहदारण्यकोपनिषद्, तैत्तिरीयोपनिषद्, ऐंतरेयोपनिषद

प्रस्तावना

भारतीय धर्म, सभ्यता, संस्कृति तथा कला आदि के विकास तथा उन्नति में उपनिषदों का महत्वपूर्ण स्थान है। उपनिषद् का मूलाधार वेद ही हैं। उपनिषद्कालीन युग में जीवन की आवश्यकताएँ पूर्ण करने हेतु व्यक्ति बहुत कुछ स्वयं ही समर्थ होता था।

उपनिशद् के आर्थिक जीवन का प्रमुख आधार कृषि तथा पशुपालन थे। विभिन्न प्रकार के स्वाद वाली सरसों, तिल आदि फसलों को उगाना इस युग में प्रारम्भ हो गया था। इस युग में कृषि करने से आर्थिक आत्मनिर्भरता और सम्पन्नता के द्वार खुले। अन्न को ब्रह्म की संज्ञा दी गई थी। उसी से प्राणी उत्पन्न होते हैं और उसी पर जीवित रहते हैं–

'अन्नं वै प्रजापतिस्ततो ह वै तद्रेतस्तस्मादिमाः प्रजा प्रजायन्त इति।[1]

उपनिषद्काल में समाज का बड़ा वर्ग कृषि में प्रवृत्त था। इसमें अधिकांशतः वैश्य लोग थे। शूद्रों में श्रम का विनियोग वे इसी दिशा में करते थे।[2] मनुष्य अपने परिश्रम से कृषि को समुन्नत बनाते थे।

उपनिषद्युग में कृषि मुख्य रूप से वर्षा पर निर्भर थी। ऋशियों ने जल को अन्न से श्रेष्ठ बताया क्योंकि जब वृष्टि अच्छी नहीं होती थी तो कम अन्न उत्पन्न होता था–

'आपो का अन्नाद् भूयस्यस्माद् यदा सुवृष्टिर्न भवति व्याधीयन्ते प्राणा अन्नं कनीयो भविष्यतीत्यथ यदा सुवृष्टिर्भवत्यानन्दिनः प्राणाः भवत्यन्नं बहु भविष्यतीति' (3)।

अन्न की प्राप्ति मुख्यतः बारिश पर निर्भर थी। अतः प्रारम्भ से लेकर आज तक कृषि मुख्य रूप से वर्षा पर आधारित है। इसके साथ ही अन्य साधनों द्वारा भी सिंचाई करने की परम्परा सदा से ही विद्यमान रही है। उपनिषदों में प्राच्य और प्रतीच्य नदियों का सन्दर्भ मिलता है। ये नदियाँ सफेद बर्फीले पर्वतों से पूर्व, पश्चिम तथा भिन्न–भिन्न दिशाओं से बहती थीं।–

'अक्षस्य प्रशासने गार्गी प्राच्योऽन्या नद्यः स्यन्दन्ते श्वेतेभ्यः पर्वतेभ्यः प्रतीच्योऽन्या यां यां च दिशमन्वेतस्य (बृहदारण्यकोपनिषद् 3/8/9)।

इस वर्णन से ज्ञात होता है कि नदियों में वर्ष पर्यन्त पानी रहता था क्योंकि उपनिषद् युग जनपदीय युग था। जनपद नदियों के किनारे बसे होते थे। इसलिए वर्षपर्यन्त बहने वाली नदियों का जल कृषि के लिए प्रयोग में लाया जाता था। प्राकृतिक नदियों के साथ–साथ मनुष्य द्वारा निर्मित तालाबों तथा प्राकृतिक झीलों का भी सिंचाई के लिए प्रयोग किया जाता था। पुष्पकारिणी (झीलों) तथा वेशान्ता (तालाबों) का सन्दर्भ भी इस वाङ्मय में मिलता है–

'तत्र वेशान्ताः पुष्पकारिणीः स्रवन्तीः सृजते स हि कर्ता'।[4]

* असि0 प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, डी0एस0बी0 परिसर, कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल।

** शोधच्छात्रा, संस्कृत–विभाग, डी0एस0बी0 परिसर, कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल।

उपनिषद्युग में विभिन्न युक्तियों से अन्नोत्पादन किया जाता था। हल का प्रयोग ऋक्संहिताकाल से ही प्रचलित था (ऋग्वेद 10/71/9)। वाजसनेयी संहिता में इसे 'सीर' कहा जाता था। यद्यपि उपनिषद्युग भी लोहे के प्रयोग से भली–भाँति परिचित था। कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा में छः अथवा बारह बैलों द्वारा खींचे जाने का वर्णन है। यह हल अत्यन्त भारी होता था जिसकी फालें लकड़ी की न होकर लोहे की बनी थीं। इससे स्पष्ट होता है कि उपनिषद् युग में लोहे की फाल का प्रयोग खेत जोतने के लिए किया जाता था। इस युग में कृषक ऐसी भूमि पर भी खेती करने लगे थे जो कठोर होती थी। अतः इस युग में कृषि के महत्व को समझा जाने लगा।

उपनिषदों में दस ग्रामीण अन्नों का सन्दर्भ मिलता है–

'दश ग्राम्याणि धान्यानि भवन्ति ब्रीहियवास्तिमाशा अणुप्रियंगवो गोधूमाश्चमसूराश्च खल्वाश्च खलकुलाश्च तान् पिष्टान् दधानि मधुनि घृत उपसिञ्चति। व्रीहेर्वा यवाद्वा सर्षपाद्वा श्यामकाद्वा श्यामकतण्डुलाद्वैव (बृह0उप0 6/4/13 तथा छान्दोग्योपनिषद् 3/14/3)। ब्रीहि, धान, जौ, तिल, माश, अणु, कांगनी, गेहूँ, मसूर, खल्व अथवा खलकुल इन दस प्रकार के अन्नों की खेती का वर्णन उपनिषद् वाङ्मय में मिलता है। इस प्रकार कृषि कर्म समाज को बलवान् बनाता था। यदि कृषि सफल है तो समाज भी धन–धान्य से सम्पन्न है। कृषि के अभाव में समृद्धि समाज से भाग जाती है। राष्ट्र में यदि दीप्ति आती है तो कृषि से जिस देश में विपुल धन–धान्य उत्पन्न होता है वह विश्व में ऊँचा सिर करके खड़ा होता है।[5]

ऋग्वैदिक युग की भाँति इस युग में भी पशुपालन की परम्परा विद्यमान थी। कृषि क्रान्ति के कारण उपनिषद्युग में उन्हें कृषि कर्म करने हेतु पाला जाता था। कृषि के विकास, यातायात तथा दुग्ध, घृतादि पौष्टिक वस्तुओं की सम्प्राप्ति हेतु पशुओं की भूयसी महत्ता थी। पशुओं से सम्पन्न व्यक्ति पशुमान् कहलाता था–'पशुमान् भवति य एतदेवं विद्वान् पशुशु' (बृह0उप01/4/10)

पशु दो प्रकार के होते थे। लोमयुक्त तथा लोमरहित – 'लोमशामजात्यादियुक्ता मन्यैश्चपशुभिः संयुक्ता।[6] भेड़ बकरी लोम वाले तथा अन्य गाय, भैंस, हाथी,घोड़ा आदि बिना लोम वाले पशु थे। पञ्चविधसामोपासना में बकरे को हिंकार भेड़ को प्रस्ताव, गौ को उद्गीथ तथा अश्व को प्रतिहार कहा है (छान्दाग्योपनिषद् 2/6/1)।

उपनिषद्युगीन समाज में गौ[7] का महत्वपूर्ण स्थान था। इस युग में राजाओं के साथ–साथ गृहस्थ तथा तत्त्ववेत्ता ऋषि भी पशुओं को पालते थे। गौओं को दान में देने की प्रथा थी। राजा जानश्रुति पौत्रायण ने गाड़ीवान् रैक्व को पहले छः सौ गौएँ तथा बाद में एक सहस्त्र गौएँ दीं। 'तदुह जानश्रुति पौत्रायणः शट्शतानि गवाम् । सहस्त्र गवान् (छां0उप0 2/6/1, 4/2/3) राजर्षि विदेहराज जनक स्वानुष्ठित बहुदक्षिणा यज्ञ में एक हजार गौएँ जिनके प्रत्येक सींग में दश–दश सुवर्णपाद बँधे हुए थे। उस ब्रह्मिष्ठ ऋषि को दान करना चाहते थे जो सर्वश्रेष्ठ हो –

'जनकस्य वेदेहस्य विजिज्ञासा बभूव कः स्विदेशां ब्राहमणानामनूचान तम इति स ह गवांसहस्त्रमवरूरोध दश–दश पादा एकैकस्या शृग्ङ्योराबद्ध बभूवुः (बृह0 उप0 3/1/1)।

अतः उपनिषद्युगीन अर्थव्यवस्था में पशु ही धन थे। इसके अतिरिक्त मनुष्य का जीवन तो पश्वन्न अर्थात् दूध पर ही अवलम्बित था। नवजात शिशु तथा नवजात बछड़े दोनों ही गौ का दूध पीकर ही जीवन धारण करते थे–'पयोहोवाग्रे मनुष्याश्च पशवष्चोपजीवन्ति' (बृह0उप0 1/5/2)। अतः उपनिषद्युगीन समाज में गौएँ धन (जीविकोपार्जन) का पर्याय थीं। इसके साथ ही तत्युगीन समाज में ऋषभ अर्थात् बैलों का भी महत्वपूर्ण स्थान था। बैलों को जोतने की प्रक्रिया तत्कालीन समाज में थी। बैलों को रथ, गाड़ी, हल आदि में भी जोता जाता था। बैल को जब गाड़ी में जोता जाता था तो उसकी प्रयोग्य संज्ञा हो जाती थी–'यथा प्रयोग्य आचरणे युक्त एवमेवायमस्मिञ्छरीरे प्राणो युक्ता' (छां0 उप0 8/12/3), अतः ऋषभ खेती के लिए महत्वपूर्ण था जो आवागमन के लिए भी उपादेय था। इसके साथ ही हस्ति, अश्व, अवि (भेड़) आदि पशुओं का पालन तत्कालीन समाज में किया जाता था।

उपनिषद्युग में कृषि तथा पशुपालन के साथ बहुविध शिल्प तथा व्यवसायों का विकास भी हो गया था। लोक में शिल्प का अर्थ मिट्टी इत्यादि से विभिन्न प्रकार के खिलौने बनाना, दर्पणादि बनाना, कपड़ा बुनना, सुवर्णमय कटकमुकुटादि बनाना, अश्वतरीरथादि बनाना था (ऐतरेय ब्राह्मण 6/301)। इन सभी को मानव अर्थात् मानुष शिल्प के अन्तर्गत परिगणित किया गया है। इस प्रकार मिट्टी के बर्तनों को बनाने की परम्परा तत्कालीन समाज में विद्यमान थी। वस्तुतः उपनिषद्युग कृषिक्रान्ति का युग था। फलस्वरूप अग्नि में पके हुए मृद्भाण्डों का निर्माण इस युग में आरम्भ हो गया था। दूध गर्म करने और भोजन पकाने की आवश्यकता ने जन्म लिया। इस प्रकार मृद्भाण्डों के अविष्कार को भी कृषि के आविर्भाव के निर्धारण में उपयोगी पाया जा सकता है।[8] इसके साथ ही मिट्टी के बर्तनों को अग्नि में पकाने के साथ–साथ ईटों को भी बनाने तथा पकाने से यह युग परिचित था। ईंटों के लिए 'कठोपनिषद्' में 'इष्टिका' शब्द का प्रयोग मिलता है–'लोकादिमग्निं तमुवाच

तस्मै या इष्टका यावतीर्वा यथा वा' ।[9]

मृद्भाण्डों के व्यवसाय के साथ तत्कालीन समाज में जीविकोपार्जन के लिए वस्त्रोद्योग में रोम वाले पशुओं से ऊन निर्मित किया जाता था। ऊनी कपड़ों को रंगकर तैयार किया जाता था। ऊन के लिए आविक शब्द मिलता है– 'यथा महारजनं वस्त्रे यथा पाण्ड्वाविकं यथेन्द्र गोपो' (बृह0 उप0 2/3/6) इस सन्दर्भ में ज्ञात होता है कि ऊनी वस्त्र विशिष्ट अवसरों पर पहने जाते थे तथा ये वस्त्र कढ़ाई वाले होते थे। वस्त्रोद्योग के साथ धातुओं का प्रयोग भी इस युग में होता था। जिसमें लोहा, त्रपु (टिन), कंस (काँसा) सीसा, सुवर्ण, रजत आदि का समवेत कथन मिलता है (छां0उप0– 4/17/7)। इन धातुओं से बने बर्तनों, गहनों आदि को बेचकर लोग अपनी जीविका चलाते थे।

उपनिषद्युग वनस्पतियों के भैषज्य प्रयोग से भी परिचित था। छान्दोग्योपनिषद् में 'भेषजकृत' (छां0 उप0 4/17/8) शब्द का अर्थ है – चिकित्सक। चिकित्साविज्ञान का प्रारम्भ ऋग्वैदिक युग में ही हो गया था। अथर्ववेद तथा उपनिषदों तक आते–जाते भैषज्य विज्ञान का विषद प्रसार हो गया था। प्रारम्भिक युग की भाँति ही उपनिषद्काल में भी भिषजों के द्वारा औषधि चिकित्सा की जाने लगी थी। प्रकृति की गोद में पैदा हुए मनुष्य का जीवन वनस्पतिमय था। अपनी दैनन्दिनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वह उन्हीं का प्रयोग करता था। आहार शय्या आदि से लेकर सभी कार्यों में विभिन्न वनस्पतियों का प्रयोग होता था। यज्ञशाला के निर्माण से लेकर यज्ञ की परिधि, यूप तथा विविध पात्रों तक में वनस्पतियों का प्रयोग होता था। अतः उपनिषद्कालीन समाज में यूप, परिधि, दण्ड, चमस, स्रुवः आदि उपकरण वनस्पतियों द्वारा ही निर्मित किए जाते थे–

'चतुरौदुम्बरो भवत्योदुम्बरः स्रुवः औदुम्बराश्चमस औदुम्बर इध्म औदुम्बर्य उपमन्थनौ'। (बृह0उप0–6/3/13)

ऋषियों ने मनुष्य के शारीरिक दोषों के निवारणार्थ भी प्राकृतिक वातारण में उपलब्ध वनस्पतियों को ही औषधि के रूप में प्रयोग करना आरम्भ किया। उपनिषद्काल में अक्ष, अश्वत्थ, वृक्ष, पलाश, पुष्करपलाश, पुण्डरीक, पिप्पल वृक्ष, आम्रवृक्ष आदि का उपयोग औषधि हेतु किया जाता था। इस प्रकार उपनिषदों में औषध वनस्पतियों का विवरण उपलब्ध होता है। इस भैषज्य विज्ञान की औषधियों का विक्रय करके भी तत्कालीन समाज के व्यक्ति अपनी जीविका चलाते थे।

उक्त के अतिरिक्त उपनिषद्काल में यातायात की समस्या नहीं थी। यात्राएँ जल तथा थल दोनों मार्गों से होती थी। थल मार्ग के लिए उपनिषदों में 'महापथ' शब्द का प्रयोग मिलता है। ये महापथ समीपवर्ती तथा दूरस्थ मार्गों को जोड़ते थे, जिससे विभिन्न ग्रामों में पैदा होने वाले अन्न तथा मनुष्यों द्वारा निर्मित वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने में सुविधा होती थी–

तद्यथा महापथसमीपवर्ती आतत उमौ ग्रामौ गच्छतीयं चामुम् (छा0उप0 8/6/2) उपनिषद्काल में यातायात के साधनों में अनस् (गाड़ी), शकट (गाड़ी छकड़ा, तौल) आचरण (गाड़ी में जोते जाने वाले पशु–घोड़ा, बैल आदि) वाह (अश्व) रथ, नौका प्रमुख थे। इन यातायात के साधनों का प्रयोग भार ढोने, यात्राएँ तथा व्यापार के लिए किया जाता था।

उपनिषद्काल में वित्तोपार्जन हेतु वैश्य वर्ग व्यापार करता था (बृह0 उप0 1/4/11 शां0 भा0)। वाणिज्य हेतु वैश्यगण एकाकी प्रवृत्ति नहीं अपनाते थे अपितु व्यापारियों के दल सामुदायिक रूप में व्यापार करते थे। यद्यपि देवों में वसु, रूद्र, आदित्य विश्वेदेव तथा मरूत इत्यादि देवगण 'गणशः' कहलाते हैं तथा देवों में ये ही वैश्यों के प्रतिनिधि देव हैं–

'स नैव व्यभवत्स विशमसृजत देवजातानि गणशः आख्यायन्ते वसवो रूद्रा आदित्या विश्वेदेवा मरूत इति' (बृह0उप0 1/4/12)

इस प्रकार 'गण' शब्द का प्रयोग कार्य विशेष के लिए संगठित समान गुण वाले व्यक्तियों के अर्थ में हुआ है। गणशः देवता और विशः सदैव एक दूसरे से युक्त रहते थे। जैसे अश्विनी कुमार युग्म (जुड़वाँ) देवता हैं तथा वे कभी वियुक्त होने वाले नहीं हैं। 'द्वितीयत्व' तथा 'अनुपगत्व' इनके विशिष्ट गुण हैं–

'द्वितीयोऽनपग इति वा अहमेतमुपास इति स य एतमेवमुपास्ते द्वितीयवान्ह भवति नास्माद्गणश्चिद्यते'– (बृह0उप0 2/1/11)

इसी प्रकार ये विश् भी सदैव परस्पर एक दूसरे से जुड़े होते हैं। अपने गण में रहकर कार्य करते हैं। उपनिषद्काल में आर्थिक संस्थाओं की प्रसिद्ध संस्था 'विश्' थी। ये 'विश्' मरूतों के गणप्राय थे। प्रसिद्ध विद्वान् अल्तेकर (10), इतिहासविद् के0 पी0 जायसवाल (11) तथा वेणीप्रसाद (12) ने ग्रामों के समुदाय को 'विश्' कहा है। कालान्तर में रथकारों, कर्मकारों, कृषकों, पशुपालकों के 'विश्' थे। अतः 'मरूत्' और 'विश्' उपनिषद्काल में उत्पाद्य कर्म कृषि कर्म से जुड़े थे, 'गणशः' थे सब मिलकर कार्य करते थे।

इस प्रकार औपनिषदिक समाज में कृषि तथा पशुपालन ही 'विश्' के प्रमुख कार्य थे तथा वे सभी वर्णों के साथ सम्बन्ध रखते थे। उपनिषदों में जीविकोपार्जन के प्रमुख केन्द्र वैश्य थे किन्तु आजीविका के निर्वाह के लिए कृषि, पशुपालन,

धातु उद्योग, वस्त्र–उद्योग, भेषज निर्माण, यातायात, व्यापार आदि उद्योग भी प्रचलित थे। कृषि की उन्नति पशुपालन के व्यवसाय पर प्रकाश डालती है। उपनिषद् काल में पशुपालन तथा कृषिकर्म इन द्विविध व्यवसायों द्वारा समाज की प्रमुख आवश्यकताओं की पूर्ति होती थी।

अन्त में कहा जा सकता है कि जितनी ज्यादा कृषि तथा पशुपालन की आवश्यकता उपनिषद्कालीन युग में थी उतनी ही वर्तमान युग में भी कृषि तथा पशुपालन की आवश्यकता हैं। क्योंकि जितनी अधिक जनसंख्या होगी उसके पालन–पोषण के लिए पशुओं तथा अनाज की भी उतनी ही आवश्यकता होगी।

सहायक सन्दर्भ

1. प्रश्नोपनिषद् 1/14, स्वामी त्रिभुवनदास, प्रकाशक–चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, प्रथम संस्करण – 2016
2. उपनिषद्कालीन समाज एवं संस्कृति –डॉ0 राजेन्द्र कुमार त्रिवेदी, प्रकाशक परिमल पब्लिकेशन्स, प्रथम संस्करण – 1983
3. छान्दोग्योपनिषद्– रायबहादुर बाबू, प्रकाशक–चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, सन् 2014
4. बृहदारण्यकोपनिषद्– डॉ0 मनुदेव बन्धु, प्रकाशक– ईस्टर्न बुक लिंकर्स–सन् 1990
5. वैदिक संस्कृति और सभ्यता– मुंशीराम शर्मा, प्रकाशक–चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, सन् 1987
6. तैत्तिरीयोपनिषद्– स्वामी त्रिभुवनदास, प्रकाशन– चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, सन् 2017
7. ऐंतरेयोपनिषद्– स्वामी त्रिभुवनदास, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली, सन् 2017
8. हड़प्पा सभ्यता और वैदिक साहित्य– भगवान सिंह, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, सन् 1987
9. कठोपनिषद्– डॉ0 पुष्पा गुप्ता, चौखम्बा सुरभारती, वाराणसी, सन् 2017
10. अल्तेकर ए0 एस0, स्टेट एण्ड गवर्नमेण्ट इन एन्शियन्ट इण्डिया पृ0 35, 2013
11. के0 पी0 जायसवाल, हिन्दू पोलिटी, पृ0 12
12. वेणीप्रसाद, द स्टेट इन एन्शियण्ट इण्डिया, पृ0 24